Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 5, May - 2023 Publication Date: 31/05/2023

DOIs:10.2018/SS/202305008 --:-- Research Paper / Article / Review

परम्परागत एवं देशज ज्ञान प्रणाली से प्रकृति का संरक्षण संभव

डॉ. सावित्री पाटीदार

सहायक आचार्य, भूगोल विभाग, एस.बी.पी. राजकिय महाविद्यालय, डूंगरपुर (राजस्थान) 314001

Email - savipatidar@gmail.com

सारांश : भारतीय परम्परागत एवं देशज ज्ञान प्रणाली में पर्यावरण एवं प्रकृति संरक्षण की अनेकों विधाएं उपस्थित हैं । ये प्रणालियां वैदिक काल से मध्यकाल में हमारें ऋषि मुनियों, जंगलों में रहने वालें आदिम एवं देशज जन समाजों द्वारा विकसित की गयी परम्पराएं हैं । पिछलें कुछ बीते वर्षों में मानव की लालसा ने पृथ्वी तत्व एवं संसाधनों को अपार नुकसान पहुचायां । प्रकृति का संरक्षण एवं पारिस्थिकी संतुलन बनाएं रखना वर्तमान समय की महती आवश्यकता हैं । परम्परागत विधाओं में प्रकृति के पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि) को सुरक्षा प्रदान करने की व्यवस्था के साथ ही साथ वनस्पति, जीव – जन्तु एवं प्राणी मात्र के संरक्षण की व्यवस्थाएं भारतीय ज्ञान प्रणाली में विकसित की गयी हैं । ये विधियां स्थानीय पर्यावरणीय संसाधनों को ध्यान में रखकर उन्हें किसी प्रकार का नुकसान न हो को ध्यान में रखकर विकसित की गयी हैं। भारत के अनेक प्रदेशों में दूरस्थ क्षेत्रों में रहने वाली जनजातियां एवं देशज समूह आज भी प्रकृति एवं संसाधनों का संरक्षण आदिम तरीकों से करती हैं । इन जनजातियों का स्थानीय संसाधनों के संरक्षण में अपना विशिष्ट योगदान हैं । देशज समूहों द्वारा विकसित किया गया यह ज्ञान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं । वर्तमान समय यह ज्ञान आधुनिकता की दौड़ में इन समाजों एवं आधुनिक पीढ़ियों से धूमिल होता नजर या रहा हैं । इस बात का विशेष ध्यान रखते हुए वर्तमान में इस ज्ञान को सहेजने एवं संरक्षित करने की आवश्यकता है जिससे हमारी भावी पीढ़िया पर्यावरण को सुरक्षा प्रदान कर सके । साथ ही परम्परागत रूप से विकसित किए गए के द्वारा सतत विकास जैसी आधुनिक संकल्पनाओं के उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके ।

बीज शब्द :- परम्परागत ज्ञान, देशज एवं जनजातीय समूह, पंचमहाभूत, प्रकृति एवं पर्यावरण, संसाधन ।

1. प्रस्तावना:

भारतीय ज्ञान प्रणाली में पृथ्वी को प्रकृति के पंचमहाभूतो में से एक महत्वपूर्ण तत्व माना गया है। पृथ्वी तत्व प्रकृति के अन्य तत्वों (जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार) की उत्पत्ति एवं विकास का आधार है। इसे जड़ जगत का हिस्सा माना गया है। भौतिक एवं खगोल विज्ञान में इसे ब्रह्मांड का सबसे सुंदर ग्रह "नीला ग्रह" माना गया है। जिसकी उत्पत्ति बिग-बैंग सिद्धांत के अनुसार लगभग 4.6 अरब वर्ष पूर्व मानी गई है[1]। आज से लगभग 3.7 अरब वर्ष पूर्व इस पर जीव की उत्पत्ति हुई ऐसा माना गया इसलिए इसे 'जीवन ग्रह' भी कहा जाता है। पृथ्वी ग्रह का अस्तित्व तब तक पूर्णत्व या संपूर्णता को प्राप्त नहीं करता जब तक इसमें अन्य पंचमहाभूतों का समन्वयन समग्रता एवं संतुलन के साथ स्थापित नहीं होता। अर्थात पृथ्वी की कल्पना अन्य पर्यावरणीय तत्वों के सामंजस्य के बिना करना असंभव है। अतः प्राणी मात्र के जीवन विकास हेतु पृथ्वी के संरक्षण के साथ-साथ अन्य तत्वों का संरक्षण करना भी बहुत ही आवश्यक है।

आज एक बार पुनः हम 'विश्व पृथ्वी दिवस' मनाने जा रहे हैं। जिसका उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लोगों का ध्यान प्रकृति या पर्यावरण संरक्षण की ओर आकर्षित करना है। पृथ्वी दिवस हमारे लिए यह संदेश लेकर आया है कि हम पृथ्वी को हरा-भरा बनाए रखें। भौतिकतावाद की दौड़ में जिस तरीके से हमने पिछले कुछ वर्षों में पृथ्वी और इसके अन्य तत्वों को जो नुकसान पहुंचाया है उस पर एक बार पुनः मनन एवं चिंतन करते हुए इसके संरक्षण के लिए कुछ परम्परागत प्रयास किए जाएं। इस वर्ष पृथ्वी दिवस का थीम "हमारे ग्रह में निवेश करें" रखा गया है [2]। प्रकृति या पर्यावरण संरक्षण हेतु यह निवेश अब प्राचीन भारतीय ज्ञान प्रणाली एवं इसके मूल दर्शन की ओर लौटकर वेदों, उपनिषदों एवं संहिताओं में लिखे गए प्रकृति संरक्षण संबंधी ज्ञान का विश्लेषण एवं अनुप्रयोग कर पुनः प्राप्त किया जा सकता है।

आज के दौर में समूची दुनियां पारिस्थितिकी असंतुलन, पर्यावरणीय विघटन एवं जलवायु परिवर्तन के दौराएं पर खड़ी है। ऐसे में हमारी इस परम्परागत ज्ञान से जुड़ी विरासत को समझना और उसे अपने जीवन में उतारना बेहद आवश्यक हो जाता है [3]। परम्परागत ज्ञान हमें प्रकृति के महत्व और पर्यावरण की हिफाजत से जोड़ता है। प्राचीन एवं मध्ययुग में जंगलों में विचरण करने वाले ऋषि-मुनियों, देशज जन- समुदायों एवं आदिम जनजातियों द्वारा प्रकृति संरक्षण की ऐसी अनेक प्रणालियां विकसित की गई कि वह आज हमारी धार्मिक, सांस्कृतिक एवं पारम्परिक रीति-रिवाजों में रच बस कर जाने अनजाने हमें प्रकृति और पर्यावरण को सहेजने की ओर ले जाती हैं। हमारे देश के अनेक हिस्सों में रहने वाले हमारे पुरखों ने ऐसी ही परम्पराओं की सौगात दे रखी है, जिसमें जल, जीव, जंगल, मिट्टी, हवा आदि के रक्षण की वैज्ञानिक विधाएं है जो आधुनिक समय में बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। यह परम्पराएं हमें प्रकृति से प्रेम और आदर भाव की ओर आगे बढ़ाती हैं।

2. परम्परागत कृषि विकास एवं मिट्टी संरक्षण की विधाएं:

भारतीय प्राचीन परम्परागत ज्ञान अनुभवजन्य ज्ञान है। आज हम जिस 'गेहूं' और 'चावल' का उपयोग खाद्य फसलों के रूप में करते हैं वह हमें नहीं पता कि कहां से आया, हमें नहीं पता की कैसे हमारे पुरखों ने जंगलों में से उन घासों को खोजा होगा, किस तरह से उनको चखा होगा, पकाया होगा और फसलों के रूप में विकसित किया होगा। यह सारा ज्ञान धीरे-धीरे परम्परागत कृषि प्रणाली में विकसित हुआ। आज भी हमारे देश में मध्यप्रदेश, झारखंड, उड़ीसा एवं छत्तीसगढ़ के जनजातीय समुदायों द्वारा 150 से अधिक चावल की पुरानी किस्मों को संभाल कर रखा गया है। उन फसलों को संभालने के तरीके बहुत ही परंपरागत हैं। यह जंगली किस्में, अनाज के दानों की गुणवत्ता, खुशबू, प्रोटीन की मात्रा और पाचन की क्षमता में मौजूदा आधुनिक नस्लों की तुलना में आनुवंशिक रूप से कई गुना बेहतर हैं। आज भी देशज समूहों द्वारा कंद-मूल, फल एवं बीज की असंख्य जंगली प्रजातियों को सहेज कर इन जनजातियों ने रखा है। अनेक पीढ़ियों से इन्हें खाने के उद्देश्य से उगाते चले आ रहे हैं। जैसे सिक्किम का 'नोटिल सूप' जिसके के बारे में आज की पीढ़ियां नहीं जानती है। यह 'बिच्छू-बूटी' से बनता है और वहां का प्रसिद्ध भोजन है। ऐसी ही तमाम तरुण फसलें एवं फल, फूल, कंद,मूल एवं जड़ी-बूटियां जो जंगलों में उग रहे हैं हमें उनका संरक्षण करना चाहिए [4]। हमें देशज समुदायों से उस ज्ञान को प्राप्त करना चाहिए और परंपरागत ज्ञान को बढ़ावा देना चाहिए। इससे एक लाभ यह होगा कि हमारा ध्यान जो अब तक 20 फसलों पर ही आधारित है, उनका विस्तार कर संतुलित आहार प्राप्त हो सकेगा। साथ ही नई किस्में, नए खाद्य पदार्थ बाजार में आएंगे तो उससे जो पुराने खाद्य पदार्थ हैं उन पर भार कम होगा और खाद्य सुरक्षा की समस्या का निराकरण होगा। इसी प्रकार परम्परागत कृषि प्रणाली में मिट्टी संरक्षण एवं उर्वरता वृद्धि के भी अनेक उदाहरण मिलते हैं। जैसे; जंगल के पेड़ों को जलाकर उसकी राख को मैदान में फैला दिया जाता है। क्योंकि पौधों के सभी पोषक तत्व उसमें मौजूद रहते हैं। उस भूमि में एक साल तक कृषि नहीं की जाती और इस दौरान किसान नजदीकी खाली भूमि में खेती करते हैं। जिस खेत को पडत या खाली छोड़ कर रखा जाता है उसकी मिट्टी खेती के लिहाज से बड़ी उर्वरक हो जाती है। अगले साल उस भूमि में खेती करने से फसल में इजाफा होता है। झूम कृषि प्रणाली के दौरान जनजातियां अपने परंपरागत ज्ञान के अनुसार जंगल में मौजूद आम, नारंगी, केला, मक्का, गन्ना और बेरी जैसे उद्यान और कृषि महत्व के

पेड़-पौधों को नहीं जलाते ताकि इनकी नस्लो को नुकसान ना पहुंचे। इसी प्रकार अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में जनजातीय लोग बांस लगाकर मिट्टी के क्षरण को रोकते हैं। मिट्टी क्षरण को रोकने से संबंधित अनेक देशज प्रणालियां भारत के अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग तरीके से विकसित हैं जो स्थानीय पर्यावरण को ध्यान में रखकर विकसित की गई है।

3. परम्परागत ज्ञान प्रणाली एवं वनस्पति संरक्षण विधाएं :

हमारी संस्कृति एवं परम्परागत ज्ञान प्रणालियों में वनों, पेड़-पौधों एवं वनस्पतियों के संरक्षण एवं संवर्धन की भावना भी छुपी हुई है। देशज समुदाय गांवों के किनारे देववनों का निर्माण करते थे। जिसमें उस इलाके में पाए जाने वाले स्थानीय महत्व के पेड़-पौधों को लगाया जाता था। वह इनकी पूजा करते थे। उस स्थान को देवी-देवताओं और अपने पूर्वजों की आत्मा का वास मानते थे। इसलिए इस जगह को पवित्र और सुरक्षित माना जाता था । आज भी देश में मध्यप्रदेश और छत्तीसगढ़ के कई ऐसे गांव हैं जहां देववन पाए जाते हैं। देववनों में अर्जुन वृक्ष, तुलसी, बेल एवं मदार जैसे पौधें उगाए जाते हैं जिन्हें धार्मिक ग्रंथों में आराध्य देव ब्रह्मा, देवी लक्ष्मी एवं शिव आदि के वास माने गए हैं। परंपरागत प्रणाली में इन देववनों और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की मुहिम को गति दी गई होगी और आगे चलकर यह राष्ट्रीय उद्यान और बायोस्फीयर रिजर्व की संकल्पना के रूप में पेड़-पौधों के संरक्षण हेतु विकसित किए गए होंगे। इसी तरह से प्राचीन एवं मध्यकाल में पीपल, बरगद, नीम जैसे छायादार वृक्षों को सड़कों के किनारे उगाने की परम्परा शुरू की गई। ताकि 'बटौहियौं' को पैदल चलते समय छाया मिल सकें। यह सब शायद उस समय का ज्ञान था जिसको धीरे-धीरे उनके जीवन को सुखद और संतुष्ट बनाने हेतु विकसित किया गया होगा। इसी प्रकार देश के अनेक हिस्सों में कुछ संप्रदायों ने परम्पराओं के माध्यम से प्राकृतिक संसाधनों की हिफाजत की है जैसे; राजस्थान का विश्नोई संप्रदाय खेजड़ी वृक्ष के संरक्षण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। राजस्थान के गर्म और रेतीले जलवायु क्षेत्र में खेजड़ी वृक्ष सदैव हरा- भरा रहता है और वहां के स्थानीय निवास बंजर भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए खेजड़ी की पत्तियों को जैविक पदार्थ के तौर पर इस्तेमाल करते हैं। शायद संरक्षण के पीछे इसी विचार को महत्त्व दिया गया होगा। जनजातीय समुदाय पौधें उगाने एवं उनका संवर्धन भी बहुत ही समझदारी से करते हैं जैसे; किसी लता या जड़ी-बूटी को उपयोग में लेना है तो उसकी पत्तियों को पीले होने तक का इंतजार करते हैं। इसके अलावा यह प्रकृति के संरक्षण को लेकर इस कदर संवेदनशील रहते हैं कि वे जब जड़ मूल को मिट्टी से बाहर निकालते हैं तो इस बात का खास ध्यान रखते हैं कि आसपास के अन्य पौधों को किसी तरह से कोई नुकसान ना होने पाए।

4. परम्परागत ज्ञान एवं औषधीय पौधों का संरक्षण :

भारत के अनेक राज्यों के जनजातीय समूह सदियों से असंख्य रोगों के लिए जड़ी-बूटियों का उपयोग एवं संरक्षण करते आए हैं। आज के समय में उन पौधों के औषधीय महत्व को पूरी दुनिया साइंटिफिकली स्वीकार कर रही है। औषधीय पौधों के अनेक उदाहरण हैं; पोहिनीया परपुलिया, सीडा एक्यूडा, जेट्रोफा गुडकस जैसे औषधीय पौधों को बुखार, सिरदर्द, शरीर में सूजन और मांसपेशियों के दर्द में राहत के लिए इस्तेमाल किया जाता है। वान्डा टेलासा और अल्टरनान्थेरा जैसे पौधों के तनों और पत्तियों को कासिया, अननाडा, सीडा कार्डाटा और बौहिनिया परपूनिया की जड़ों के साथ मिलाकर एक पेस्ट बनाया जाता है जिसका उपयोग सदियों से जनजातियां हड्डियों के टूटने के उपचार में करते आए हैं [5]। आज की दुनिया में इनके औषधीय महत्व को वैज्ञानिकता के साथ पूरी दुनिया स्वीकार कर रही है अर्थात औषधीय पौधों का संरक्षण एवं संवर्धन करने की परम्परा प्राचीन काल से ही विकसित है। वर्तमान में आवश्यकता पुनः इसकी सततता एवं महत्ता बनाए रखने की है। साथ ही इस ज्ञान को हमारे से पूर्वजों एवं बुजुर्गों से सीखने एवं सहेजने की है। औषधीय रूप में पौधों का उपयोग एवं संरक्षण कहीं ना कहीं पेड़ पौधों के रक्षण की परंपरा से ही जुड़ा हुआ है।

5. परम्परागत ज्ञान एवं वन्य-जीव संरक्षण विधाएं :

पुरातन ज्ञान प्रणालियों में न केवल पेड़-पौधों को बल्कि वन्यजीवों यहां तक कि पालतू पशु एवं जानवरों को भी आदर भाव से देखा गया है। जहां आदर का भाव जुड़ जाए वहां पर उनका संरक्षण लोग अपना कर्तव्य समझने लगते हैं। वन्यजीवों में अनेक जंतुओं को धार्मिक मान्यताओं में आदर का सूचक भी माना गया है (जैसे; शेर, बाघ, हाथी, मोर, उल्लू, चूहे इत्यादि)। सांप जैसे विषैले जंतु को धार्मिक आस्था से जोड़ने के पीछे इनके संरक्षण की भावना ही रही होगी। हम सभी जानते हैं कि प्रकृति की खाद्य-श्रृंखला में सांप एवं चूहों की भी एक अहम भूमिका है। यह जीव पारिस्थितिकी संतुलन को कायम रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। ऐसे ही पर्यावरण में व्याप्त हर जीव-जंतुओं का संरक्षण करना हमारा कर्तव्य है क्योंकि इनके संरक्षण से ही पारिस्थितिकी संतुलन संभव है।

6. परम्परागत ज्ञान एवं जल संरक्षण संबंधी विधाएं :

आकाश एवं जल तत्व के संरक्षण के अनेकों उदाहरण भी हमारी दैनिक जीवनचर्या में परंपरागत रूप से देखने मिलते हैं। पहाड़ी इलाकों के किसान अपने देशज ज्ञान के आधार पर बारिश के पानी को व्यर्थ होने से बचाने के लिए छोटे-छोटे तालाबों का निर्माण करते हैं और उन तालाबों के पानी से फसलों की सिंचाई करते हैं। इसी तरह पुरातन काल के जल स्रोतों के उदाहरण जैसे; कुआं, बावड़ी, टांके एवं तालाब सभी जल संरक्षण के ही उदाहरण है। जल-संभरण द्वारा जल को संरक्षित करना कोई आधुनिक तकनीकी नहीं है इसे प्राचीन काल से ही हमारे पूर्वज जल संरक्षण हेतु पहाड़ी एवं रेगिस्तानी क्षेत्रों के लिए उपयोग में लाते रहे हैं। गड़वाल की महिलाएं केवल विरासत में मिले परंपरागत ज्ञान कौशल के कारण ग्रामीण अर्थव्यवस्था की सक्रिय भागीदारी होती हैं। वे खाने, पकाने, घर और बच्चों की देखभाल के साथ – साथ खेती और पशुपालन में भी बराबर भूमिका निभाती है। परिवार के पालन – पोषण को भी वे सुबह से शाम तक वे पुरुषों से कई ज्यादा मेहनत करती है। जिसमें उनकी जल संरक्षण को लेकर भी बेहतरीन भूमिका रहती हैं।

7. परम्परागत ज्ञान एवं मौसमीय घटनाओं की संभावनाओं संबंधी विधाएं :

परंपरागत ज्ञान प्रणाली में आकाश का रंग, उसकी दशा, बादलों की स्थिति, हवाओं की दिशा, जीव-जंतुओं एवं वनस्पतियों के क्रियाकलापों के सतत एवं गहरे अवलोकनों के द्वारा मौसमीय एवं जलवायवीय घटनाओं के पूर्वानुमान लगाने की ज्ञान प्रणालियां भी हमारे परंपरागत ज्ञान प्रणाली में विकसित है । आज भी देश के दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बूढ़े-बुजुर्गों द्वारा अक्टूबर माह में बदली द्वारा गर्भ ग्रहण किए जाने की प्रक्रिया के आधार पर आने वाले नवें माह में वर्षा कैसी होगी की संभावना व्यक्त करने की कला विकसित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में खेतों-खलीहानो में गर्मियों में टिटिहरी पक्षी द्वारा अंडे दिए जाने की संख्या, उनकी स्थिति आदि के आधार पर आने वाली वर्षा ऋतु में कितने माह वर्षा होगी का पूर्वानुमान भी हमारे पूर्वजों द्वारा लगाया जाता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे जीव जंतुओं के क्रियाकलापों जैसे; मकड़ी, चींटी, दिमक, झिंगुर आदि के क्रियाकलाप देखकर अगले 24 घंटों में वर्षा कैसी होगी का पूर्वानुमान लगाया जाता हैं। इसी प्रकार अनार, नींबू जैसे पौधों पर फूल आने की प्रक्रिया को देखकर भी हमारे पूर्वज आगामी वर्ष में सूखा, अकाल या वर्षा अच्छी होगी या नहीं आदि की भविष्यवाणियां बड़ी आसानी से करते आए हैं। यह समस्त ज्ञान सालों से पर्यावरण अवलोकन एवं अनुभवों से संग्रहित किया गया ज्ञान है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थानांतरित होता रहा है। यह ज्ञान आधुनिक समय मैं भी मौसम एवं जलवायु संबंधी भविष्यवाणियां करने के लिए कहीं ज्यादा सटीक एवं यथार्थ माना जाता है।

8. निष्कर्ष :

वर्तमान समय में पेड़-पौधों, पशु-पक्षियों, मिट्टी, हवा, पानी जैसे अन्य प्राकृतिक तत्वों के साथ तालमेल बैठाकर पृथ्वी को सहेजने की कोशिश हो रही है। इस तरह की कोशिश एवं विकास को सतत विकास का नाम दिया गया हैं।

यथार्थता में यह अवधारणा हमारी परम्परागत ज्ञान प्रणाली में सदियों से विकसित हुई हुयी हैं। यह कोई नई अवधारणा नहीं है। आवश्यकता बस परम्परागत एवं देशज समूहों द्वारा सदियों से विकसित की हुई इस ज्ञान प्रणाली को पुनः विस्तार एवं सहेजने की है। क्योंकि यह ज्ञान हमारे पुरखों के साथ खोता हुआ नजर आ रहा है। आधुनिक पीढ़ी को इस ज्ञान से मुखातिब कराने की आवश्यकता हैं। साथ ही इस ज्ञान को वैज्ञानिक प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करने की जरूरत है। एक बार पुनः इस ज्ञान को सुरक्षित रखते हुए हर व्यक्ति को जिम्मेदारी के साथ इस ज्ञान का उपयोग प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण के लिए करना होगा। जिससे हमारी भावी-पीढ़ियां स्वच्छ प्रकृति से मिलन मना सकेगी और हमारी यह धरा हरी-भरी बनी रहेगी। इस प्रकार देशज एवं परंपरागत ज्ञान प्रणालियों को महत्व देते हुए पर्यावरण एवं प्राकृतिक तत्वों का संरक्षण करना वर्तमान समय की महतीआवश्यकता है। एक बार पुनः हमें परंपरागत एवं देशज ज्ञान की ओर लौटना होगा तभी इस पृथ्वी रूपी पंचमहाभूत तत्व का संरक्षण संभव हैं ।

संदर्भ सूची :

1. The History of Earth – How our Planet Formed https://youtu.be/pN7VQas4OgQ
2. Announces theme for Earth Day 2023: “Invest in Our Planet” Earthday.org
3. Human Impact on the Environment https://education.nationalgeographic.org/resource/resource-library-human-impacts-environment/
4. Sagar (2020) Environmentally Sustainable Culture Practices of Indigenous People’s. Womenforindia.org
5. Bisht, V., Kandari, L., Negi, J., Bhandari, A., & Sundriyal, R. (2013). Traditional use of Medicinal Plants in District Chamoli, Uttarakhand, India. *Journal of Medicinal Plants Research.* Vol.7 (15) pp. 918-929.